# जैन मिथक तथा उनके आदि स्रोत भगवान् ऋषभ+

**डॉ० हरीन्द्रभूषण जैन**

**निदेशक—अनेकान्त शोधपीठ,**

**बाहुबली ( कोल्हापुर )**

'मिथ' शब्द अंग्रेजी भाषा का है जिसका अर्थ है—पुराकथा, कल्पितकथा या गप्प। इसमें संस्कृत भाषा का 'क' प्रत्यय जोड़कर 'मिथक' शब्द का निर्माण हुआ है। हमने यहाँ मिथक शब्द का व्यवहार पुराकथा अर्थात् 'पुराण' के रूप में किया है।

**जैन धर्म—परिचय एवं प्राचीनता**

जैन शब्द का अर्थ है कर्म रूपी शत्रुओं को जीतनेवाला। अतः कर्मजयी सिद्धों, अरिहंतों और २४ तीर्थङ्करों द्वारा उपदिष्ट धर्म जैनधर्म के नाम से जाना जाता है। इसके अनुसार भगवान् ऋषभदेव इस युग के सबसे प्रथम तीर्थङ्कर हैं। उनके काल की अवधारणा शक्य नहीं है। इसी कारण, जैन धर्म को अत्यन्त प्राचीन माना जाता है। महावीर इस युग के अन्तिम तीर्थङ्कर हैं।

**जैन साहित्य**

जैन साहित्य चार अनुयोगों में विभाजित है—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग तथा द्रव्यानुयोग। पुराण-पुरुषों के चरित्र पर प्रकाश डालने वाला द्रव्यानुयोग है। लोक और अलोक का विवेचन करनेवाला करुणानुयोग है। गृहस्थ और साधु के आचार का प्रतिपादन करने वाला चरणानुयोग है। जीव-अजीव आदि सात तत्त्वों का प्रतिपादक प्रथमानुयोग है। प्रथमानुयोग ही जैन मिथक का साहित्य है।

प्रथमानुयोग की परिभाषा करते हुए रत्नकरण्ड श्रावकाचार ( २. २. ) में कहा है 'प्रथमानुयोग मुक्तिरूप परम अर्थ का व्याख्यान करनेवाला, पुण्यप्रद पुराण पुरुषों के चरित्र की व्याख्या करनेवाला श्रोता की बोधि और समाधि का निधान, समीचीन ज्ञानरूप है।'

प्रथमानुयोग चरित्र एवं पुराणरूप से दो प्रकार होता है। किसी एक विशिष्ट पुरुष के आश्रित कथा का नाम चरित्र है तथा त्रेसठ शलाका पुरुषों के आश्रित कथा का नाम पुराण है। ये त्रेसठ शलाका पुरुष निम्न हैं : चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव, नौ वासुदेव तथा नौ प्रतिवासुदेव।

षट्खण्डागम के अनुसार पुराण बारह प्रकार का है जो निम्नलिखित १२ वंशों की प्ररूपणा करता है। १ अरिहंत, २ चक्रवर्ती, ३ वसुदेव, ४ विद्याधर, ५ चारण ऋषि, ६ श्रमण, ७ कुरुवंश, ८ हरिवंश, ९ ऐक्ष्वाकुवंश' १० कासियवंश, ११ वादी और १२ नाथवंश।

त्रेसठ शलाका पुरुषों के आश्रित कथाशास्त्र रूप पुराण में इन आठ बातों का वर्णन होना चाहिए—लोक, पुर, राज्य, तीर्थ, दान, दोनों तप और गतिरूप फल। ऐसा कहा जाता है कि प्रारम्भ में यौवनशलाका पुरुषों की मान्यता रही है, इनमें नौ प्रतिवासुदेव जोड़कर कब यह संख्या त्रेसठ हो गई, यह अन्वेषणीय है।

---

+ अखिल भारतीय मिथक संगोष्ठी, विक्रम विश्वविद्यालय में पठित लेख का संक्षेपित रूपान्तर।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**जैन मिथक साहित्य**

जैन साहित्य में मिथक अर्थात् पुराण साहित्य की बहुलता है। यह संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश—तीनों भाषाओं में निम्न रूप में उपलब्ध है।

**प्राकृत भाषा के पुराण ग्रन्थ**—पउमचरिय, चउपन्नमहापुरिसचरिय, पासनाहचरिय, सुपासनाहचरिय, महावीरचरिय, कुमारपालचरिय, वसुदेवहिंडो, समरादिच्चकहा, कालकाचरियकहा, जम्बुचरित्रं, कुमारपालपडिबोध आदि।

**संस्कृत भाषा के पुराण ग्रन्थ**—पद्मचरित, हरिवंशपुराण, पाण्डवपुराण, महापुराण, त्रिषष्ठिशलाकापुराणचरित, चन्द्रप्रभचरित, धर्मशर्माभ्युदय, पार्श्वाभ्युदय, वर्धमानचरित, यशस्तिलकचम्पू, जीवन्धरचम्पू आदि।

**अपभ्रंश भाषा के पुराण ग्रन्थ**—पउमचरिउ, महापुराण, पासणाहचरिउ, जसहरचरिउ, भविसयत्तकहा, करकंडुचरिउ, पउमसिरिचरिउ, बड्ढमाणचरिउ आदि। इस प्रकार जैन धर्म में अपार जैन मिथक साहित्य उपलब्ध है।

**पुराण और महापुराण**

जिनसेवाचार्य ने अपने महापुराण ( आदि पुराण ) में पुराण की व्याख्या 'पुरातन पुराणं स्यात्' की है। उन्होंने आगे यह भी बताया है कि वे अपने ग्रन्थ में त्रेसठ शलाका पुरुषों का पुराण कह रहे हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि जिसमें एक शलाका पुरुष का वर्णन हो, वह पुराण तथा जिसमें अनेक शलाका पुरुषों का वर्णन हो वह महापुराण है। उनके ग्रन्थ में जिस धर्म का वर्णन है, उसके सात अंग हैं—द्रव्य, क्षेत्र, तीर्थ, काल, भाव, महाफल और प्रकृत। तात्पर्य यह है कि पुराण में षड्द्रव्य, सृष्टि, तीर्थस्थापना, पूर्व और भविष्यजन्म, नैतिक तथा धार्मिक उपदेश, पुण्य-पाप के फल और वर्णनीय कथावस्तु अथवा सत्पुराण के चरित का वर्णन होता है।

पुराण की उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर कहा जा सकता है कि पुराण में महापुरुषों का चरित, ऋतुपरिवर्तन और प्रकृति की वस्तुओं के अन्दर होनेवाले परिवर्तन, प्राकृतिक शक्तियों और वस्तुओं का वर्णन, आश्चर्यजनक एवं असाधारण घटनाओं का वर्णन, विश्व तथा स्वर्ग-नरकादि का वर्णन, सृष्टि के आरम्भ और प्रलय का वर्णन, पुनर्जन्म, पुण्य-पाप, वंश, जाति, राष्ट्रों की उत्पत्ति, सामाजिक संस्थाओं और धार्मिक मान्यताओं का वर्णन तथा ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन होना चाहिए।

**पुराण और महाकाव्य**

धीरे-धीरे जैनपुराणों में काव्यमय शैली का भी समावेश हो गया। यह तत्कालीन प्रभाव ही प्रतीत होता है। जिनसेनाचार्य के अनुसार, महाकाव्य वह है जो प्राचीन काल के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाला हो, जिसमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती इत्यादि महापुरुषों का चरित्र-चित्रण हो तथा जो धर्म-अर्थ-काम के फल को दिखाने वाला हो, आचार्य जिनसेन ने अपने महापुराण को महाकाव्य भी माना है। कहने का तात्पर्य यह है कि महापुराण का रूप पुराण से वृहत्काय होता है और जैन पुराणों में काव्यात्मक शैली का भी समावेश हो गया है।

**पुराणों का रचना को काल और भाषा**

पुराण और महापुराण नामक रचनाओं का आधार क्या है? जिनसेनाचार्य के अनुसार, तीर्थंकरादि महापुरुषों के द्वारा उपदिष्ट चरितों को महापुराण कहते हैं। तात्पर्य यह है कि इन पुराणों की कथाएँ तीर्थंकरों के मुख से सुनी गई और ये ही परम्परा से चली आ रही है। उपलब्ध पुराण-साहित्य पर दृष्टिपात करें तो मालूम होगा कि ये रचनाएँ विक्रम की छठीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक पनपती रहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने धर्म प्रचार में साधारण जन को प्रभावित करने के लिए उन लोगों की जो बोल-चाल की भाषा थी, उसे ही अपने साहित्य का माध्यम बनाने में जैन लोग अग्रणी रहे हैं। इस कारण समय-समय पर बदलती हुई भाषाओं में जैन पुराण-साहित्य का सृजन हुआ है।

प्राकृत के बाद जब संस्कृत का अधिक प्रभाव बढ़ा, तो उस भाषा में भी पुराणों की रचना करने में जैन लोग पीछे नहीं रहे। पश्चात् जब अपभ्रंश-भाषाओं ने जोर पकड़ा, तब अपभ्रंश रचनाएँ भी होने लगी। इस प्रकार हम देखेंगे कि प्राकृत (महाराष्ट्री)—पुराणों का रचना काल छठीं से पन्द्रहवीं शताब्दी तक, संस्कृत-पुराणों का दशवीं से उन्नासवीं शताब्दी तक तथा अपभ्रंश-पुराणों का काल दशवीं से १६वीं शताब्दी तक रहा है।

प्रचुरता की दृष्टि से प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश पुराणों का उत्कृष्ट काल क्रमशः १२वीं-१३वीं, १३वीं से १७वीं तथा १६वीं शती रहा है। इन सब में संस्कृत कृतियों की संख्या सर्वोपरि है।

**जैन पुराण-शास्त्र की विशेषताएँ**

जैन पुराणों में प्रारम्भ में तीन लोक, काल-चक्र व कुलकरों के प्रादुर्भाव का वर्णन होता है। पश्चात् जम्बूद्वीप व भारत देश का वर्णन करके तीर्थस्थापना तथा वंश विस्तार दिया जाता है। तत्पश्चात् सम्बन्धित पुरुष के चरित का वर्णन होता है। प्रारम्भ में उनके अनेक पूर्वभवों की कथाओं के साथ अन्य अवान्तर कथाओं का भी समावेश होता है। इस प्रकार उनमें उस समय प्रचलित लोक कथाओं के भी दर्शन होते हैं। इन कथाओं में उपदेशों की कहीं संक्षिप्तता, तो कहीं भरमार रहती है। उनमें जैन सिद्धान्त का प्रतिपादन, सत्कर्मप्रवृत्ति और असत्कर्मनिवृत्ति, संयम, तप, त्याग, वैराग्य आदि की महिमा, कर्मसिद्धान्त की प्रबलता आदि पर बल रहता है। इन प्रसंगों पर मुनियों का प्रवेश भी पाया जाता है। इनके अतिरिक्त शेष भाग में तीर्थंकर की नगरी, माता-पिता का वैभव, गर्भ, जन्म, अतिशय, क्रीड़ा, शिक्षा, दीक्षा, प्रव्रज्या, तपस्या, परीषह, उपसर्ग, केवलज्ञान की प्राप्ति समवशरण, धर्मोपदेश, विहार, निर्वाण इत्यादि का वर्णन संक्षेप या विस्तार से सरल रूप में या कल्पनामय अथवा लालित्य एवं अलंकृत रूप में पाया जाता है। सांस्कृतिक दृष्टि से इन ग्रन्थों में भाषातत्त्व का विकास, सामान्य जीवन का चित्रण तथा रीति-रिवाज इत्यादि के दर्शन होते हैं जो पर्याप्त महत्त्वपूर्ण हैं।

**जैन रामायण और महाभारत**

भारतीय जनता को रामायण और महाभारत बहुत ही प्रिय रहे हैं। जैन पुराण साहित्य का श्रीगणेश भी इन्हीं दो कथानकों के ग्रन्थों से होता है। उपलब्ध जैन पुराण साहित्य में प्राचीनतम कृति प्राकृत भाषा में है। यह विमल-सूरि (५३० वि० या ४७३ ई०) की पउमचरिउ (पद्मचरित) नामक रचना है। इसमें आठवें बलदेव दाशरथी राम (पद्म), वासुदेव लक्ष्मण तथा प्रतिवासुदेव रावण का चरित वर्णित है। इस रामकथा की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं जो पारम्परिक रामचरित से भिन्न हैं। जैसे—वानर और राक्षस—ये मनुष्य जातियाँ हैं—पशु नहीं, राम का स्वेच्छापूर्वक वनगमन, स्वर्णमृग की अनुपस्थिति, सीता का भाई भामंडल, हनुमान के अनेक विवाह, सेतुबन्ध की अनुपस्थिति आदि। यह रचना गाथाबद्ध है। कहीं-कहीं पर अलंकारों के प्रयोग तथा रस-भावात्मक वर्णनों के होते हुए भी इसकी शैली रामायण व महाभारत जैसी है।

संस्कृत भाषा में भी प्रथम जैन पुराण राम सम्बन्धी ही है जो रविषेणाचार्य (७३५ वि० या ६७८ ई०) रचित पद्मपुराण है। इसी प्रकार अपभ्रंश भाषा में भी प्रथम उपलब्ध जैनपुराण 'पउमचरिउ' है जो स्वयंभूदेव (८९७-९७७ वि० या ८४०-९२० ई०) की रचना है।

काल की दृष्टि से रामायण के पश्चात् महाभारत सम्बन्धी कथा-कृतियों की गणना जैन पुराण साहित्य में होती है। जैन साहित्य में ये रचनाएँ हरिवंशपुराण या पाण्डवपुराण के नाम से विख्यात है। उपलब्ध साहित्य में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनसेन कृत (८४० वि० या ७८३ ई०) संस्कृत हरिवंशपुराण, तथा स्वयंभूदेव कृत अपभ्रंश का 'रिट्ठणेमिचरिउ' प्रथम रचनाएँ हैं। आचार्य विमलसूरि द्वारा प्राकृत भाषा में भी महाभारत से सम्बन्धित कोई रचना की गई थी, ऐसा 'कुवलयमाला' में उल्लेख है। इन रचनाओं में तीर्थंकर नेमिनाथ, उनके चचेरे भाई वासुदेव कृष्ण, बलदेव, जरासन्ध तथा कौरव-पाण्डवों के वर्णन, पारम्परिकता से समता और विषमता रखते हुए उपलब्ध हैं।

**जैनमिथकों के आदि स्रोत भगवान् ऋषभ**

रामायण और महाभारत के पश्चात् काल की दृष्टि से महापुराणों की बारी आती है जिनमें त्रिषष्टिशलाका पुरुषों अथवा चौबीस तीर्थंकरों आदि के चरित्र वर्णित हैं। संस्कृत भाषा में इस सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण रचना महापुराण है। इसका प्रथम भाग आदिपुराण जिनसेनाचार्य कृत है तथा उत्तरपुराण उनके शिष्य गुणभद्र की रचना है। आदिपुराण में प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव तथा उनके पुत्र प्रथम चक्रवर्ती भरत का एवं उत्तरपुराण में शेष शलाका पुरुषों के चरित्र वर्णित हैं।

एक समय था जब भरत क्षेत्र में कल्पवृक्ष पूरित भोगभूमि रही। किन्तु समय ने पलटा खाया, जीवन निर्वाह की सामग्री देने वाले कल्पवृक्ष स्वयं धीरे-धीरे नष्ट हो गए। उस समय जनता के समक्ष अनेक प्रकार की कठिन समस्याएँ क्रम-क्रम से आने लगीं। उन विकट समस्याओं को सुलझाने के लिए निम्न चौदह युग प्रधान नेताओं, मनुओं या कुलकरों का अवतार हुआ : १. प्रतिश्रुति, २. सन्मति, ३. क्षेमंकर, ४. क्षेमंधर, ५. सीमंकर, ६. सीमंधर, ७. विमलवाहन, ८. चक्षुष्मान्, ९. यशस्वान्, १०. अभिचन्द्र, ११. चन्द्राभ, १२. मरुद्देव, १३. प्रसेनजित् और १४. नाभिराय। ये मनु जनसाधारण की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान् थे। इस कारण इन्होंने मानव समाज की समस्याओं को अपने विशेष ज्ञानबल से सुलझाने का प्रयत्न किया। अन्तिम मनु नाभिराय की गुणवती पत्नी मरुदेवी थी। मरुदेवी के गर्भ में एक महान् तेजस्वी पुत्र आया। इसके गर्भ में स्थित होते ही नाभिराय के घर में हिरण्य अर्थात् स्वर्ण की वृष्टि हुई। इस कारण देवताओं ने 'हिरण्यगर्भ' कहकर स्तुति की। पुत्र के जन्म के समय उसके दाहिने पैर में बैल का चिह्न था, इस कारण उसका नाम ऋषभनाथ या वृषभनाथ रखा गया।

ऋषभनाथ जन्म से ही महान् ज्ञानी, अत्यन्त सुन्दर, प्रकृष्ट बलवान्, अतिशय दयालु तथा प्रबल पराक्रमी थे। युवा होने पर उनका विवाह नन्दा तथा सुनन्दा नामक दो परम सुन्दरी कन्याओं से हुआ। नन्दा के गर्भ से भरत आदि सौ पुत्र तथा ब्राह्मी नामक एक पुत्री हुई। सुनन्दा के गर्भ से बाहुबली नामक एक महाबलशाली पुत्र एवं सुन्दरी नामक एक कन्या का जन्म हुआ।

भगवान् ऋषभनाथ ने अपने ज्ञानबल से लोगों को कृषि करके अन्न उत्पन्न करने की और अन्न से भोजन बनाने की विधि सिखलायी। उन्होंने इक्षु से रस निकाल कर उसे काम में लेने की विधि भी बताई। वहीं से इक्ष्वाकु वंश का प्रारम्भ माना गया। उन्होंने कपास पैदा कर उससे वस्त्र बनाने के उपाय बतलाए। धातुओं तथा मिट्टी से बर्तन बनाने की प्रक्रिया समझायी। इसके अतिरिक्त ऋषभदेव ने मनुष्यों को अस्त्र-शस्त्र चलाने की विद्या तथा शिल्पकला सिखलाई। उन्होंने व्यापार करने का ढंग तथा परस्पर सहयोग से रहकर जीवन निर्वाह करने के उपाय जनता को बतलाए।

भगवान् ऋषभ ने अपने बड़े पुत्र भरत को नाट्य-कला सिखलाई। सम्भवतः उसी से भरत नाट्यशास्त्र के आचार्य माने जाते हैं। उन्होंने बाहुबली को मल्लविद्या में निपुण किया एवं अन्य पुत्रों को राजनीति, बुद्धनीति आदि कलाओं की शिक्षा दी।

एक दिन भगवान् आदिनाथ निश्चिन्त प्रसन्न मुद्रा में बैठे हुए थे। तब उनकी दोनों पुत्रियाँ आकर उनकी गोद में बैठ गईं। ब्राह्मी बाएँ घुटने पर बैठी तथा सुन्दरी दाहिने घुटने पर। दोनों पुत्रियों ने मीठी भाषा में कहा, "पिताजी, आपने सबको अनेक विद्याएँ सिखलाई, हमें भी कोई अक्षय विद्या दीजिए।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् ने कहा, "अच्छा बेटी, तुम अपना दाहिना हाथ खोलकर निकालो, मैं तुम्हें अक्षय विद्या सिखाता हूँ।" तब ब्राह्मी ने अपना दाहिना हाथ भगवान् के सामने कर दिया। भगवान् ने अपने दाहिने हाथ के अँगूठे से उसकी हथेली पर अ, इ इत्यादि १६ स्वर, क, ख इत्यादि ३३ व्यंजन एवं ४ योगवाह अक्षर लिखकर उसके अक्षर विद्या या लिपिबद्ध विद्या सिखलाई। उस पुत्री के नाम से ही उस आद्यलिपि का नाम जगत् में बाह्मीलिपि प्रसिद्ध हुआ।

सुन्दरी भगवान् के दाहिने घुटने पर बैठी थी। अतः उसकी उसकी हथेली पर भगवान् ने अपने बाएँ हाथ के अँगूठे से १, २, ३, आदि अंक लिखकर इकाई, दहाई, सैकाड़ा आदि को अंक पद्धति तथा संकलन, विकलन, गुणा भाग आदि गणित सिखलाया। बाँया हाथ होने से उन अंकों के लिखने का क्रम अक्षरों से उलटा ( दाहिनी ओर से इकाई आदि के रूप में प्रारम्भ होकर बाईं ओर लिखने की परिपाटी ) बतलाया गया। अतः तभी से अंकों के लिखने की पद्धति अक्षरों की अपेक्षा उलटी चल पड़ी।

इस प्रकार भगवान् आदिनाथ ने जगत् में कर्मयुग ( कृषि, शिल्प, विद्या, व्यापार आदि परिश्रम करके जीवन निर्वाह करने के उपाय ) की सृष्टि की। इस कारण जगत् में उनके नान 'आदि ब्रह्मा' 'प्रजापति' विधाता, आदिनाथ, आदीश्वर आदि विख्यात हुए।

एक दिन भगवान् ऋषभनाथ राजसभा में बैठे थे। उस समय नीलांजना नामक अप्सरा सभा में नृत्य करते करते आयु पूर्ण हो जाने से मृत्यु को प्राप्त हो गई। इस घटना से उन्हें वैराग्य हो गया। उन्होंने अपने बड़े पुत्र भरत को राज्य सिंहासन पर बिठाकर अपना समस्त राज्यसभा तथा गृहस्थाश्रम का भार उसे सौंप दिया। अपने अन्य पुत्रों को भी थोड़ा-थोड़ा राज्य देकर स्वयं सब कुछ त्यागकर वे वन की ओर चल दिए। वहाँ पर उन्होंने अपने शरीर के समस्त वस्त्र-भूषण उतार दिए और नग्न होकर छह मास का योग लेकर आत्म-साधना में बैठ गए। उस अचल आसन के समय उनके शरीर पर सर्प आकर चढ़ते उतरते रहते थे तथा गले में भी लिपटे रहते थे। उनके सिर पर बाल बहुत बढ़ गए थे। उस जटा में वर्षाऋतु का जलभर जाता था और बहुत समय तक जल की धारा बहती रहती थी। आगे चलकर वे शिव के प्रतीक बन गए। छह मास निराहार रहकर, कठोर तपश्चर्या के पश्चात् जब वे भोजन के लिए निकटवर्ती गांव में जाए, तो वहाँ के स्त्री-पुरुष यह नहीं जानते थे कि साधु को किस प्रकार आहार दिया जाय। भगवान् अपने मुख से कुछ बोलते न थे। अतः उन्हें छह मास तक भोजन नहीं मिल पाया। इस तरह एक वर्ष तक निराहार रहकर उन्होंने तपस्या की।

एक वर्ष के पश्चात् हस्तिनापुर के राजा श्रेयांस के यहाँ ठीक विधि से आहार मिला। उस समय भगवान् ने तीन चुल्लू इक्षु का रस पीकर पारणा की। तदनन्तर स्त्री-पुरुषों को साधु को भोजन कराने की विधि मालूम हो गई। एक हजार वर्ष की कठोर आत्म-साधना करने के पश्चात् भगवान् ऋषभ ने आत्मशत्रुओं—काम, क्रोध, मद, मोह, ईर्ष्या, राग, द्वेष आदि पर विजय प्राप्त की, संसार-भ्रमण के कारणभूत घातिया-कर्मों पर विजय प्राप्त की और वे शुद्ध-बुद्ध, वीत-राग, सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा बन गए। आत्म-शत्रुओं पर विजय पाने के कारण उनका नाम 'जिन' (जीतनेवाला) विख्यात हुआ।

उसी समय उनका मौन भंग हुआ। उन्होंने जनता को धर्म का उपदेश देना प्रारंभ किया। उन्होंने संसार से मुक्त होने की विधि, जन्म-मरण से छुटकारा पाकर अजर-अमर परमात्मा बनने की प्रक्रिया सबको सरल सुबोध भाषा में समझाई। इस प्रकार उन्होंने सबसे प्रथम जिस धर्म का प्रचार किया, उसका नाम उनके प्रसिद्ध 'जिन' नाम के अनुसार जैनधम प्रसिद्ध हुआ। उनके धर्म-उपदेश से सर्वसाधारण को लाभ पहुँचाने के लिए देवताओं द्वारा एक गोल, सुन्दर, विशाल सभा-मण्डप ( समवशरण ) बनाया गया। उसमें १२ कक्ष बनाए, उन कक्षों में देव-देवियाँ, मनुष्य-स्त्रियाँ, साधुसाध्वियां, तथा पशु-पक्षी आदि सभी जीव बैठकर भगवान् का उपदेश सुनते थे। उस समवशरण ( सभा-मण्डप ) के बीच में एक तीन कटनी की वेदी बनी थी। उसके ऊपर सिंहासन था। सिंहासन के बीच कमल था, उस कमल पर भगवान् विराजते थे। भगवान् का मुख पूर्व या उत्तर दिशा की ओर होता था किन्तु दैवी चमत्कार से उनका मुख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चारों दिशाओं में दिखाई देता था। इस कारण जनसाधारण उन्हें 'कमलासन पर विराजमान चतुर्मुखी आदि ब्रह्मा' भी कहते थे।

भगवान् ने आचारांग आदि १२ अंगों का तथा प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग का उपदेश दिया। उनके उपदेश का क्रमाचार विवेचन करनेवाला प्रथम गणधर उनका ही दीक्षित साधुपुत्र 'वृषभसेन' हुआ। वृषभसेन के बाद ८३ गणधर और भी हुए।

इस प्रकार भगवान् ऋषभ लम्बे समय तक मोक्षमार्ग का प्रचार करते हुए आत्मसाधना के लिए कैलास पर्वत पर विराजमान हुए। वहाँ उन्होंने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र रूप त्रिशूल के द्वारा अवशिष्ट कर्म-शत्रुओं का क्षय किया। उस समय उनका नाम कैलासपति प्रसिद्ध हुआ। पर्वतनिवासिनी जनता ( पार्वती ) उनको अपना प्रभु मानती थी, अतः वे पार्वतीपति भी कहे जाने लगे।

**भरत की दिग्विजय**

भगवान् ऋषभ के ज्येष्ठ पुत्र भरत ने राज्यसिंहासन पर बैठकर न्याय-नीतिपूर्वक बहुत दिनों तक शासन किया। कुछ समय पश्चात् वे अपनी विशाल सेना और 'चक्र' नामक दिव्यास्त्र लेकर दिग्विजय के लिए निकले। समस्त देशों तथा समस्त राजाओं को जीतकर वे प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् बने। उन्हीं के नाम पर समस्त देशों का सामूहिक नाम 'भरतक्षेत्र' तथा इस देश का नाम 'भारत' प्रसिद्ध हुआ।

जैनशास्त्रों के इस कथन की पुष्टि अन्य जैनेतर पुराण तथा शास्त्र भी करते हैं। वेदों में भगवान् आदिनाथ का नाम ऋषभ, वृषभ तथा हिरण्यगर्भ के रूप में बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। शिवपुराण आदि में ऋषभ का चरित्र वर्णित है। भागवत ( प्रथम स्कंध, तृतीय अध्याय ) में ऋषभ को विष्णु के २२ अवतारों में आठवाँ अवतार माना गया है। यहाँ उनके माता-पिता का नाम मरुदेवी और नाभिराय ही है।

**बाबा आदम और रसूल**

इस्लाम धर्म के अनुसार मनुष्यों को सन्मार्ग पर चलाने के लिए बाबा आदम ने धर्म का उपदेश दिया। क्षुल्लक पार्श्वकीर्ति ( वर्तमान नाम एलाचार्य मुनि श्री विद्यानन्दजी ) ने विश्वधर्म की रूपरेखा ( पृ० ३८ ) में लिखा है कि 'आदम' आदिनाथ का अपभ्रंश रूप है। इस्लाम जिस आदि पुरुष को 'आदम' शब्द से कहता है, वह बाबा आदम भगवान् ऋषभनाथ ही हैं जिनका अपर नाम आदिनाथ है। एलाचार्य ने कहा है कि इस्लामी ग्रन्थों में बताया गया है कि नबी का बेटा रसूल था जिसको खुदा ने ईश्वरीय उपदेश जनता तक पहुँचाने के लिए पैदा किया। इसका भी अभिप्राय वही है कि नबी ( नाभि ) का पुत्र ( बेटा ) रसूल ( ऋषभ ) हुआ जो मनुष्यों का पहला धर्मोपदेशक था।

**भरत और भारत**

हमारे देश का नाम भारत, अत्यन्त प्राचीन नाम है। देश का यह नाम भगवान् आदिनाथ के ज्येष्ठ पुत्र चक्रवर्ती भरत के नाम पर प्रचलित हुआ है। इस बात का समर्थन मार्कण्डेयपुराण ( अध्याय १२ ), तथा नारदपुराण ( अ० ४८ ) आदि कहते हैं। विष्णुपुराण ( अंश २ अध्याय १ ) में कहा गया है कि सौ पुत्रों में सबसे बड़ा पुत्र भरत ऋषभ से पैदा हुआ। उस भरत से इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। भगवान् ऋषभ के जीवन में, जैन संस्कृति के अतिरिक्त भारतीय संस्कृति के भी अनेक मिथकीय तत्त्व प्रचुरता के साथ हमें दिखाई पड़ते हैं—जैसे, हिरण्यगर्भ की कल्पना, ब्रह्मा, प्रजापति और त्रिशूलधारी, जटाओं में गंगा को धारण करने वाले, पार्वतीपति शिव के स्वरूप, भरत का नाट्यशास्त्र और भरत नाम की कल्पना, ब्राह्मीलिपि और अंक विद्या का प्रादुर्भाव आदि।

इस प्रकार जैन तीर्थंकर भगवान् ऋषभ का जीवन, जैन मिथक के आदि स्रोत के रूप में तो प्रतिष्ठित है ही, भारतीय मिथकों के स्रोत के रूप में भी प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org